REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 7 | ISSUE - 9 | JUNE - 2018

स्त्री अस्मिता की राजनीति और 'फैसला' कहानी

डॉ. दीपक कुमारी
सहायक प्रोफेसर , हिन्दी विभाग , चौ. बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी.

प्रस्तावना :–

आधुनिक परिदृश्य में जहाँ अस्मिता का प्रश्न अहम सवालों में से एक है, वहीं स्त्री-अस्मिता का प्रश्न एक महत्वपूर्ण मुद्दे के रूप में उभर कर सामने आता है, जिसे किसी भी कीमत पर अनदेखा नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह आधी आबादी के अधिकारों का सवाल भी है। इन अधिकारों की शुरूआत समानता के बिना संभव नहीं है। इसलिए स्त्री अस्मिता की चर्चा करना अर्थात स्त्री के उन सभी अधिकारों की मांग जो उसे मनुष्य की अवधारणा के रूप में परिभाषित होने से वंचित रखते हैं। इसी स्त्री अस्मिता से आंरभ होकर स्त्री आंदोलनों के माध्यम से स्त्री-विमर्श के विभिन्न पक्षों को पुरजोर ढ़ग से उठाया जा रहा है। इस सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य में ही स्त्री विमर्श को समझा जा सकता है।

''स्त्री विमर्श की तह में ही सबसे प्रमुख प्रश्न है..... स्त्री को मनुष्य के रूप में स्वीकारा जाना, जबकि समाज में उसे दोयम दर्जे की प्राप्ति और साथ ही समाज की रूढ़ परंपराएं, जिन्होंने 'स्त्री' को 'स्त्री' के रूप में परिभाषित किया है। सीमोन द बोउवार के शब्दों में कहें तो, ... स्त्री पैदा नहीं होती स्त्री बना दी जाती है।''[1]

अर्थात औरत की मौजूदा अधीनता, अपरिवर्तनीय जैविक असमानताओं से नहीं पैदा होती बल्कि यह ऐसे सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों और विचारधाराओं की देन है जो महिलाओं की वैचारिक और भौतिक अधीनता को सुनिश्चित करती है।

स्त्रीवादी लेखिकाएं स्त्री-अस्मिता को एक नहीं कई रूपों में देखती हैं। किसी के यहां शरीर, किसी के यहां मन तो किसी के यहां स्त्री की अनुभूति प्रमुख है।

स्त्री अस्मिता के स्वरूप को सुधासिंह ने इस तरह परिभाषित किया है, ''स्त्री अस्मिता का प्रमुख आधार है, स्त्री को पुरूष संदर्भ से बाहर लाना और स्त्री संदर्भ में रखकर देखना। पितृसत्ता विचारधारा का विरोध करना। उन तमाम तर्कों का निषेध अथवा अस्वीकार जो स्त्री को उसकी स्वतंत्र पहचान से वंचित करते हैं अथवा मातहत बनाते हैं। स्त्री और पुरूष दो अस्मिताएं हैं।''[2]

दरअसल स्त्री - अस्मिता का सवाल केवल व्यक्ति अस्मिता का सवाल नहीं है, बल्कि व्यक्तिक अस्मिता के सामाजिक अस्मिता में रूपातंरण की प्रक्रिया है। जो सदियों से स्त्री के अनेक स्वरूप स्वयं गढ़ एवं निर्मित कर रहा है। स्त्री का स्वरूप गढ़ने में कई आधारों ने मुख्य भूमिका निभाई है। जिस वजह से स्त्री की अनेक पहचान समाज में निर्मित हुई, पर मनुष्य के रूप में उसे कभी नहीं पहचाना गया। इन्हीं तमाम बिंदुओं को स्त्रीवादी लेखिकाओं ने अपने-अपने ढ़ग से साहित्य में चित्रित किया है।

मैत्रेयी पुष्पा की 'फैसला' नामक कहानी स्त्री-अस्मिता और वर्तमान राजनीति की परतों को खोलकर रख देती हैं। इस कहानी में समाज में मौजूद स्त्री और पुरूष संबंधों के बीच की खाई को भी उजागर किया है तथा समाज की भूमिका को भी उभारा है। समाज केवल व्यक्तियों का समूह मात्र नहीं होता, बल्कि वह व्यक्ति के अस्तित्व की ऐसी शर्त बन जाती है जिससे पृथक व्यक्ति की कल्पना संभव नहीं है।

''बसुमति गांव में प्रधान चुनी जाती है तो अपने ब्लॉक प्रमुख पति की रबड़ स्टाम्प है। पति उस पर दबाव डालकर उल्टे सीधे फैसले करवाता है। वसुमति भीतर ही भीतर आहत होती रहती है। पुरूष वर्चस्व के आत्मसातीकरण से उत्पन्न संकोच से भीतर ही भीतर लड़ती है।''[3]

किसी समाज में स्त्री का स्थान क्या है, इससे उस समाज की स्थिति पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। 'फैसला' नामक कहानी में भी बसुमति की स्थिति उसके पति की तुलना में दोयम दर्जे की है तथा उसको मिलने वाले वोटों का कारण उसका स्त्री

होना ही है जो कि स्त्रियों का अपने 'स्व' के प्रति सचेत होने तथा उसी के माध्यम से अपने सारे दुःख-दर्द दूर करने के सपने भी संजोए हुए हैं। इसी कारण बसुमति को इतने अधिक विरोध व पार्टीबाजी के बाद भी जीत हासिल हुई।

बसुमति अपनी जीत का विश्लेषण करते हुए कहती है कि, ''कैसे मिल गए इतने वोट? गांव में पार्टीबंदी थी, विरोध था, फिर ..... ? बाद में कारण समझ में आ गया था, जब मैंने सारी औरतों को एक ही भाव से आह्लादित देखा। उंमगों-तरंगों का भीतरी आलोड़न चेहरों पर छलक रहा था।''[4]

बसुमति की जीत में गांव की सभी स्त्रियों को अपनी जीत या अपने अधिकारों के प्रति लड़ने की एक उम्मीद दिखाई दे रही थी। पर बसुमती को जीत में अपनी हार के पहलु भी नजर आ रहे थे। किस तरह उसका पति पहले की तुलना में उस पर अधिक बंदिशे रखने लगा और उसकी जीत को अपनी प्रतिष्ठा के साथ जोड़ कर देखने लगा।

पितृसत्ता की यह खासियत होती है कि वह स्त्री को अपनी आन-बान-शान से जोड़कर औरत पर बंदिशे बढ़ाता चलता है और खुद की हैसियत को बढ़ाता चलता है .....।

''वे प्रमुख बने तो बंदिशों में कुछ और कसावट आ गई और जब मैं स्वयं प्रधान बन गई तो उनकी प्रतिष्ठा कई-कई गुणा ऊँचे चढ़ गई।''[5]

बसुमति के पति प्रमुख बने तो उन्होंने पहले की तुलना में बंदिशों को ओर अधिक बढ़ा दिया। स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व को लेकर सचेत मैत्रेयी ने बसुमति के माध्यम से स्त्री की स्थिति को रेखांकित किया है कि किस तरह स्त्री पर बंदिशे और शान-शौकत के घटने-बढ़ने से जोड़ कर देखने की पुरूषवादी सोच स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व की कल्पना भी नहीं कर सकती, परंतु समाज में स्त्रियां धीरे-धीरे ही सही, पर अपने अस्तित्व के प्रति सचेत भी हो रही हैं तथा उसके खिलाफ आवाज भी बुलंद कर रहीं हैं। अब चुपचाप सहने का जमाना नहीं रहा है। इसी कहानी की पात्र ईसुरिया अपनी सोच को उजागर करती हुई कहती है - ईसुरिया- ''बरोबरी का जमाना आ गया। अब ढढरी बंधे मरद माराकुटी करें, गारी-गरौज दें, मायके न भेजे, पीहर से रूपइया पइसा मंगवावें, क्या कहते हैं कि दायजे के पीछे संतावें, तो बैन सूधी चली जाना बसुमती के ढ़िग।''[6] ईसुरिया कहानी में दलित पात्र हैं जो अपने विचार सीधे शब्दों में प्रस्तुत करती हैं।

रमणिका गुप्ता कहती है कि , ''स्त्री मुक्ति की अवधारणा सापेक्षक है। ऐसे तो मुक्ति की अवधारणा भी बदलती रहती है लेकिन एक गरीब खटने कमाने वाली औरत की मुक्ति उसकी देह-मुक्ति के साथ-साथ जो पुरूष हिंसा का शिकार बनती है उसकी भूख से मुक्ति भी है, जिसके लिए रोजगार की जरूरत होती है। एक दलित मजदूर औरत के लिए तिहरी मुक्ति चाहिए - स्त्रीपन, गरीबी और जाति की मुक्ति। इसी गरीबी रेखा के नीचे वाले वर्ग की स्त्री और निम्न, मध्यम वर्ग, अभिजात व उच्च मध्यम वर्ग की स्त्री के लिए देह का अर्थ भिन्न होता है।''[7]

दरअसल स्त्री-मुक्ति का संघर्ष कई स्तरों पर एक साथ लड़ा जा रहा है।

बसुमति की राजनैतिक भागीदारी महज उसके पति द्वारा छलावा मात्र थी वह उसे घर की चार-दीवारी में ही बंद रखना चाहते थे। जब बसुमति पंचायत में चली जाती है तो उसका पति रनवीर घर आने पर उसे उसकी हैसीयत का पाठ पढ़ाने लगता है-

लौटकर रनवीर ने खूब समझाया था, ''पंचायती चबूतरे पर बैठती तुम शोभा देती हो? लाज-लिहाज मत उतारो, कुल परम्परा का ख्याल भी नहीं रहा तुम्हें? औरत की गरिमा आढ़-मर्यादा से ही हे। फिर तुम क्या जानो गांव में कैसे-कैसे धूर्त हैं?''[8]

पुरूषवादी सोच स्त्री को अपनी मर्यादा से जोड़कर उसकी गुलामी या दासता को और अधिक मजबूत करना चाहती है।

जगदीश्वर चतुर्वेदी कहते हैं कि - ''स्त्री की पहचान जन्मजात न होकर सामाजिक निर्मिति है। स्त्री की अस्मिता का निर्माण करने वाला प्रमुख तत्व है उसका पुरूष संदर्भ, इसके अतिरिक्त उसकी अस्मिता को पहचानने का यदि कोई रूप सामने आता है तो समाज आज भी इस रूप में स्त्री को पहचानने से इंकार कर देता है।''[9]

बसुमति पंचायत में जाकर फैसला करने के बाद सुख और आनंद की अनुभूति करती है क्योंकि उसे भी इस बात का अहसास है कि सदियों से जो रास्ता बंद पड़ा था उसके खुलने की शुरूआत इस फैसले से हो गई थी। यह फैसला स्त्री की चेतना को जागृत करने का रास्ता भी खोलता था।

''फैसला करवाकर आयी तो अपूर्व तोष में भीगी हुई थी, अनाम आर्द्रता और प्रेमिल निष्ठा के साथ लिया निर्णय। पवित्र मंदिर-सा लगा था पंचायत का चबूतरा, जिस पर बैठकर रूके हुए सड़े जल को जैसे काटकर बहा दिया हो मैंने। सम्पूर्ण गंदगी रिता दी हो अपने हाथों से। अब मानो नई वाटिका का बीजारोपण होगा वहां।''[10]

राजनीति में स्त्रियों की भागीदारी को सुनिश्चित करने तथा पुरूष वर्चस्व, सांमती-सोच और पितृसतात्मक ढ़ांचे में फंसी बसुमति एक दिन झटके के साथ संकोच की दीवार लांघ जाती है। वह प्रमुख के चुनाव में अपना मत पति के खिलाफ देती है और उसका पति एक वोट से हार जाता है।

आज की स्त्री राजनीति, खेल, विज्ञान, साहित्य और अन्य क्षेत्रों में अपने रोल मॉडल चुन लेती हैं। इन्हीं से प्ररेणा पाकर न जाने समाज की कितनी लड़कियों ने अपने सपनों को जागृत किया तथा अपने अधिकारों व निर्णय लेने की क्षमता के प्रति एक विश्वास जगाया।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. सं0 साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता नारीवादी राजनीति, माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, पृ0 40
2. सुधा सिंह, ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ, ग्रंथशिल्पी प्रा0 लि0 दिल्ली, 2008 पृ0 12
3. सं0 अरूण प्रकाश, कहानी-संग्रह, हमारा हिस्सा , पेंगुइन बुक्स, दिल्ली, 2005, पृ0 भूमिका।
4. मैत्रेयी पुष्पा, फैसला, सं0 अरूण प्रकाश कहानी संग्रह, हमारा हिस्सा, पेंगुइन बुक्स, दिल्ली, 2005, पृ0 314
5. मैत्रेयी पुष्पा, फैसला, सं0 अरूण प्रकाश कहानी संग्रह, हमारा हिस्सा, पेंगुइन बुक्स, दिल्ली, 2005, पृ0 315
6. मैत्रेयी पुष्पा, फैसला, सं0 अरूण प्रकाश कहानी संग्रह, हमारा हिस्सा, पेंगुइन बुक्स, दिल्ली, 2005, पृ0 316
7. रमणिका गुप्ता, कथादेश, सितंबर 2008, पृ0 93
8. मैत्रेयी पुष्पा, फैसला, सं. अरूण प्रकाशन पृ0 319
9. जगदीश्वर चतुर्वेदी, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, ग्रंथाशिल्पी, प्रा0 लि0 दिल्ली, पृ0 7
10. मैत्रेयी पुष्पा, फैसला, सं0 अरूण प्रकाश, पृ0 322